लिन्काई गमन्गो व अन्य

बनाम

दया निधी जेना व अन्य

31 मई, 2004

(ब्रिजेश कुमार और अरूण कुमार, जे.जे.)

उड़ीसा अनुसूचित क्षेत्र अचल संपत्ति हस्तांतरण (अनुसूचित जनजाति द्वारा) विनियम, 1956 धारा 2 (च), 3(1) एवं 5(2) अचल सम्पत्ति भूमि कथित रूप से उत्तरदाताओं गैर आदिवासियों द्वारा जबरन कब्जा कर लिया गया आदिवासी समुदाय से संबंधित मालिकों ने कब्जे प्राप्ति की मांग करते हुए याचिका दायर की। सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमत किया गया। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा प्रकरणों को आगे की जांच के लिए विचारण न्यायालय में भेज दिया गया। विचारण न्यायालय ने याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि चूंकि वादग्रस्त भूमि परिसीमा की निर्धारित अवधि से अधिक उत्तरदाताओं के कब्जे में भी इसलिए विनियमन के प्रावधान आकर्षित नहीं होते हैं। अपीलीय न्यायालय ने उलट किया व भूमि के मालिकों का भूमि पर कब्जा बहाल किया। उच्च न्यायालय द्वारा अनुमत की अपील पर माना विवादित भूमि उत्तरदाताओं के कब्जे में अनुसूचित क्षेत्र के भीतर आती है गैर आदिवासी एक गैर आदिवासी को प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और स्वामित्व प्राप्त नहीं होगा। उच्च न्यायालय को अपने निष्कर्ष

पर पहुंचने से पहले सबूत के भार के संदर्भ में भूमि के कब्जे और स्वामित्व से संबंधित मुद्दों पर विचार करना चाहिए था इसलिए उच्च न्यायालय का निष्कर्ष संवहनीय नहीं है। मामले को नये सिरे से सुनवाई और निर्णय के लिए उच्च न्यायालय को भेज दिया गया।

अपीलकर्ता वादग्रस्त भूमि के मालिक एक अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित हैं ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष याचिकाएं इस आधार पर दायर की कि वादग्रस्त भूमि का कब्जा उत्तरदाताओं ने विवादित भूमि पर जबरन कब्जा कर लिया। प्राधिकरण ने याचिकाकर्ताओं मालिकों के पक्ष में निर्णय लिया और उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वह याचिकाकर्ताओं को कब्जा सौंप दे। अपीलीय प्राधिकरण ने मामले को पुनः जांच के लिए विचारण न्यायालय में भेज दिया। इस बीच राज्य सरकार ने उड़ीसा नुसूचित क्षेत्र अचल संपत्ति हस्तांतरण अनुसूचित जनजातियों द्वारा विनियम 1956 प्रख्यायित किया जिसके अनुसार विवादित भूमि अनुसूचित क्षेत्र में आती है। विचारण न्यायालय ने यह मानते हुए कि वादग्रस्त भूमि 30 वर्षों से उत्तरदाताओं के कब्जे में चली आ रही थी। इसलिए विनियम के प्रावधान आकर्षित नहीं होते हैं। याचिका खारिज कर दी। अपीलीय न्यायालय ने पाया क्योंकि अपीलार्थियों को विवादग्रस्त भूमि के कब्जे उत्तरदाताओं द्वारा जबरदस्ती वंचित रहे। इसलिए वह विनियम के संदर्भ के अनुसार कब्जा वापिस प्राप्ति के अधिकारी हैं। पीड़ित उत्तरदाताओं ने एक रिट याचिका

दायर की जिसे उच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया। अतः वर्तमान अपीलों को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:-

1-1 आमतौर पर कुछ अपवादों के अधीन एक आदिवासी द्वारा गैरआदिवासी को अचल संपत्ति का हस्तांतरण अस्वीकार्य है और यह अमान्य अंकृत व शून्य है। (828 & जी)

1-2 यह स्पष्ट है कि एक गैरआदिवासी को प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और स्वत्व प्राप्त नहीं होगा। इसलिए अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करने का आधार विवादित भूमि पर उत्तरदाताओं के कब्जे के बारे में अन्य तथ्यात्मक पहलू और उनके पक्ष में प्रविष्टियों का भी बहुत अधिक महत्व नहीं हो सकता है। किसी भी स्थिति में मामले का यह पहलू प्रकरण के अन्य तथ्यों व परिस्थितियों के अलोक में नये सिरे से देखा व विचार किया जाना चाहिए। (832 और सी.एच और आई.एच और एम.एच)

अमरेंद्र प्रताप सिंह बनाम तेज बहादुर प्रजापति और अन्य [जे.टी. (2003) 9 एस.सी. 201] माधवराव वामन सौंडलगेकर व अन्य बनाम रघुनाथ वेंकटेश देशपांडे और अन्य [ए-आई-आर- (1923) पी-सी-205 और करीमुल्लाखान पुत्र मोहम्मद] इशाकखान और अन्य बनाम भानू प्रतापसिंह [ए-आई-आर-36 (1949) नागपुर 265] पर निर्भर थे।

मधिया नायक बनाम अर्जुन प्रधान और अन्य] 65 (1988) सी एल टी 36] प्रतिष्ठित।

1-3 अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के अनुसूचित क्षेत्र में भूमि पर गैरजनजातीय लोगों द्वारा प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार और स्वत्व के अधिग्रहण का सवाल ही उत्पन्न नहीं होता है। उच्च न्यायालय का निष्कर्ष संवहनीय नहीं है। [पूरे मामले को अपीलीय प्राधिकरण द्वारा नए सिरे से देखने की आवश्यकता है। यदि आवश्यक हो तो अभिलेख पर अन्य प्रासंगिक साक्ष्य] जैसा कि अपीलार्थियों द्वारा इंगित किए जाने की मांग की गई है। [विनियम सं- 2] 1956 प्रावधानों के आलोक में भी देखा जा सकता है। उत्तरदाताओं के दावे के निहितार्थ कथित रूप से प्रतिकूल कब्जे द्वारा अपने अधिकारों को परिपूर्ण करने के कारण की भी जांच की जानी चाहिए। इसलिए मामले को नई सुनवाई और निर्णय के लिए उच्च न्यायालय में भेजा जाता है। (833&,p-] (833 और सी.एच और आई.एच और एम.एच))

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारिताः सिविल अपील नं- 868-74/1998

उड़ीसा उच्च न्यायालय के दिनांक 27-10-1992 के निर्णय एवं आदेश से ओ-जे-सी- 1989 की संख्या 3992, 3993, 3994, 3995, 3996, 3997 और 3998

अपीलार्थी की ओर से एस.पी. शर्मा, एम.पी. राजू, सुश्री लेनी थॉमस, अश्विनी, अभिषेक अत्रे और शिशिर सिंह।

उत्तरदाताओं की ओर से जनार्दन दास, श्वेतकेतु मिश्रा, सुश्री मौसमी गहलोत, श्रीमती कीर्ति रेणु मिश्रा और वाई- प्रभाकर राव।

न्यायालय का निर्णय दिया गया था कि–

बृजेश कुमार जे- इस न्यायालय के समक्ष इन अपीलों की कार्यवाही 1976 के राजस्व विविध मामलों संख्या 150 से 156 से उत्पन्न होती है, जो परियोजना प्रशासक, आई-टी-डी-ए-, पारला खेमुंडी और अतिरिक्त न्यायाधीश के समक्ष उड़ीसा विनियमन संख्या 2, 1956 के प्रावधान के तहत जिला मजिस्ट्रेट, गंजाम, उड़ीसा राज्य के समक्ष अलग–अलग उत्तरदाताओं के विरुद्ध अपीलकर्ताओं द्वारा अलग–अलग दायर किये थे। ये मामले उन अपीलार्थियों द्वारा दायर किए गए थे जो गुम्मा ब्लॉक के खरियागुड़ा गांव की अनुसूचित जनजातियों से संबंधित हैं। जबकि विभिन्न मामलों में जिन उत्तरदाताओं को विपक्षी के रूप में पक्षकार बनाया था आशर्यगुडा गांव के पानों ईसाई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विवादित भूमि खारियागुडा गांव में आती है जो की 1956 के विनिमय संख्या 2 के प्रावधानों के अन्तर्गत एक अनुसूचित क्षेत्र है। अलग–अलग मामले दायर करने वाले अपीलार्थियों का दावा है कि भूमि उनकी है, लेकिन उत्तरदाताओं ने उस पर जबरन कब्जा कर लिया है। मुकदमों का निर्णय अपीलार्थियों

के पक्ष में वादग्रस्त भूमि की बहाली के निर्देश के साथ किया गया। ओ.एस.डी-, पारलाखेमंडी द्वारा पारित आदेश दिनांक 28-02-1979 के माध्यम से किया गया। अपील पर हालांकि, अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, गंजम, चतरापुर ने वादग्रस्त भूमि की पहचान को ध्यान में रखते हुए मामलों को आगे की जांच के लिए भेज दिया। उक्त निपटान में भूखंड संख्या आदि के आवंटन के साथ टी- एस- संख्या 16\61 के कबाला दिनांक 05-05-1927 के संदर्भ में भूमि का पता लगाया जाना था।

मामले में आगे बढ़ने से पहले, यह प्रासंगिक होगा कि उड़ीसा राज्य ने संविधान की अनुसूची पांच के मद 5 के उप मद (2) के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए विनियमन, 1956 प्रख्यायित किया। जिसे उड़ीसा विनिमय संख्या 2, 1956 के रूप में जाना जाता है। धारा 2 के खण्ड (च) के अनुसार, अचल संपत्ति का हस्तांतरण'' परिभाषित किया गया। जिसका अर्थ है:

> ''बंधक कब्जों के साथ या बिना कब्जा, पट्टा, बिक्री, उपहार, विनिमय या ऐसी सम्पत्ति में अन्य व्यवहार जो कि वसियत स्वभाव ना हो एवं इसमें इस तरह से संबंधित शुल्क या अनुबंध शामिल है।"

विनियमन की धारा 3 में प्रावधान है कि अनुसूचित जनजाति के सदस्य द्वारा किसी भी अचल संपत्ति का हस्तांतरण किसी ऐसे व्यक्ति को

किया जाता है जो अनुसूचित जनजाति से संबंधित नहीं है। वह पूरी तरह से अंकृत व शून्य होगी सिवाय इसके कि जहां सक्षम प्राधिकारी की पूर्व सहमति से, लिखित रूप में हो। उपधारा 2 धारा 3 में यह भी प्रावधान है कि सक्षम प्राधिकारी कब्जे के उल्लंघन में स्वप्रेरणा से कब्जे से उस व्यक्ति को बेदखल कर सकेगा। धारा 3 की उपधारा (1) धारा 3 की उपधारा (1) इस प्रकार है-

> ‘‘3- (1) उस समय के लिए किसी भी कानून में कुछ भी निहित होने के बावजूद अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा अनुसूचित क्षेत्र के भीतर स्थित अचल संपत्ति का कोई भी हस्तांतरण तब तक पूर्ण रूप से अंकृत व शून्य होगा कोई बल व प्रभाव नहीं होगा जब तक कि अनुसूचित जनजाति के किसी अन्य सदस्य के पक्ष में या सक्षम प्राधिकारी की पूर्व लिखित सहमति से नहीं किया जाता है।"

हम आगे निष्कर्ष निकालते हैं कि धारा 5 की उपधारा 2 के अन्तर्गत समर्पण या त्याग को भी हस्तांतरण माना जाता है। विनियमन के कुछ अपवादों के साथ इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामान्यतया कुछ अपवादों के अधीन, एक आदिवासी द्वारा गैरआदिवासी को अचल संपत्ति का हस्तांतरण अस्वीकार्य है और यह अमान्य, अंकृत व शून्य है। इस मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, हम पाते हैं कि रिमांड के बाद मामले की सुनवाई हुई

और यह भी पता चलता है कि कुछ अन्य पक्षों को भी हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गई थी। राजस्व निरीक्षण जिन्हें प्लॉटों के पहचान का कार्य सौंपा गया था ने अपनी रिपोर्ट पेश की व जिरह के लिए साक्षी के रूप में उपस्थित हुये। विचारण न्यायालय ने राजस्व निरीक्षक की रिपोर्ट पर विचार करते हुये यह प्रेषित किया कि राजस्व निरीक्षक द्वारा उसकी जिरह में बताई गई सीमाएं लगभग सह-समाप्त हैं सीमा 1927 के कबला में इंगित की गई हैं और इसे स्वीकार किया जाना है।" परियोजना प्रशासक आई- टी- डी- ए-, परलाखमुंडी ने आगे कहा कि राजस्व निरीक्षक की रिपोर्ट के अनुसार वादग्रस्त भूमि को द्वितीय व तृतीय पक्ष के उत्तरदाता के नाम पर दर्ज किया गया था। राजस्व निरीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर यह भी माना गया कि याचिकाकर्ताओं अर्थात् इसमें अपीलकर्ताओं (आदिवासियों) ने निपटान संचालन के किसी भी स्तर पर वादग्रस्त भूमि को पाने हेतु कोई आपत्ति नहीं उठाई थी। हालांकि यह संकेत नहीं दिया गया है कि कौन उत्तरदाता वादग्रस्त भूमि के कब्जे में हो, परन्तु यह देखा गया है कि उनमें से कुछ का 1927 के कबाला के अनुसार 30 साल से अधिक समय से कब्जा है, जो धारा 7-डी के अनुसार परिसीमा अवधि है। इसलिए यह उड़ीसा विनियमन संख्या 2, 1956 की धारा 3 ए (1) को आकर्षित नहीं करेगा। तद्नुसार, विचारण अदालत ने याचिकाओं को खारिज कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त आदेश राजस्व निरीक्षणक की रिपोर्ट पर आधारित है।

विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने अलग से अपीलों को प्राथमिकता दी, विनियमन अपील सं- 1 से 1987 के विनियमन अपील सं- 7 के रूप में संख्याकित किया गया। कलक्टर और जिला मजिस्ट्रेट, गंजाम, अपीलीय प्राधिकरण ने अपील स्वीकार करते हुए विचारण न्यायालय के आदेश दिनांक 25-03-1987 को अपास्त करते हुये निर्देश दिये कि अपीलार्थियों का कब्जा तुरंत बहाल किया जावे। अपीलीय अदालत ने कहा कि अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, मामले को रिमाण्ड के दौरान केवल यह चाहते थे कि विचारण न्यायालय आर.ओ.आर. में 1927 के आर.एस.डी. की प्रविष्टि और 1961 के स्वामित्व मुकदमे के आदेश के संदर्भ में भूमि की पहचान के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष दें। इस संबंध मं अपीलीय अदालत ने कहा कि चूंकि प्रतिवादी विवादित भूमि पर कब्जा स्वीकार करते हैं, जैसा कि अपीलकर्ताओं द्वारा दावा किया गया है, इसलिए दस्तावेजों के संदर्भ में पहचान का सवाल ज्यादा प्रासंगिक नहीं था। विवादित भूमि पर वास्तविक कब्जा विवादित नहीं था। अपीलीय अदालत ने तब पाया कि विचारण न्यायालय ने अमीन के साक्ष्य पर भरोसा करना अपीलार्थियों के लिए उपयुक्त नहीं था, जिनकी गवाही में प्रतिपरीक्षा 1927 के दस्तावेजी साक्ष्य के साथ मेल खाती थी। लेकिन ऐसा करते समय पहले की रिपोर्ट पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया था। जो अपीलार्थियों के मामले का समर्थन करता था। यह देखा गया कि अमीन की प्रतिपरीक्षा पर निर्भर रहना विचारण न्यायालय का आदेश था,

जो कि त्रुटिपूर्ण और गलत था। इसके बाद अपीलीय अदालत ने कहा कि निपटान कार्रवाई के दौरान, जो भी कब्जे में पाया जाता है, उसे इस प्रकार तद्नुसार दर्ज किया जाता है। उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि वे जबरन 1958 से कब्जे में थे। इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि उनके नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किये गये थे। इसलिए ऐसे अभिलेखों पर कोई निर्भरता नहीं रखी जा सकती क्योंकि यह देखा गया है कि इस भूमि के संबंध में लंबे समय से मुदमा चल रहा था। इस प्रकार अपीलीय न्यायालय ने अंततः पाया कि चूंकि अपीलार्थियों को प्रत्यार्थियों द्वारा जबरन उनके कब्जे से वंचित कर दिया गया था, वे कब्जा वापस करने के हकदार थे, विशेष रूप से विनियम 2, 1956 का अर्थ अनुसूचित क्षेत्र के दलित व्यक्तियों के अधिकारों व विशेषाधिकारों की रक्षा करना है व उनको अन्य वर्ग द्वारा शोषण से बचाना है। अपीलीय अदालत द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर, प्रत्यार्थियों ने एक रिट याचिका दायर की जो स्वीकार की और अपीलीय न्यायालयों के आदेश का अपास्त किया। उच्च न्यायालय ने दो प्रश्न तैयार किए जिनके आधार पर अपीलीय न्यायालय के आदेश को चुनौती दी गई थी। पहला, यह निष्कर्ष कि भूमि अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की थी, इस निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए कोई सबूत या सामग्री नहीं थी और दूसरी, कि स्वीकार्य रूप से उत्तरदाताओं का 1958 से जबरन ली गई विवादित भूमि के कब्जे में माना जाता है।

स्वयं अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों के अनुसार, प्रत्यर्थियों ने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। यह आगे पाया गया है कि उड़ीसा विनियमन 1, 1975 संशोधन परिसीमा अवधि को पूर्वव्यापी प्रभाव देते हुए प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार के चिरभागी अधिकार हेतु इसे 12 से बढ़ाकर 30 वर्ष करने के लिए 02-10-1973 से प्रभावी हो गया, जबकि उत्तरदाताओं ने 1958 से 12 वर्ष अर्थात् 02-10-1973 पूरे हाने पर अपने अधिकार को पहले ही पूरा कर लिया था। इस संबंध में, उच्च न्यायालय ने उड़ीसा उच्च न्यायालय के निर्णय 65 (1988) सी.एल.टी.पी. 360, मधिया नामक बनाम अर्जुन प्रधान और अन्य पर भरोसा किया। इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका को स्वीकार करते हुए और विभिन्न अपीलों में अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित आदेशों को अपास्त करने के लिए केवल दो कारण दिए गए हैं कि अपीलीय प्राधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि विवादित भूमि का स्वामित्व व कब्जा अपीलार्थी अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 5 था। उनके इस निष्कर्ष हेतु समर्थन बिना किसी समर्थन के था कि विवादित भूमि पर कब्जा और प्रतिकूल तरीके से अपने अधिकारों को पूरा किया था।

हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए ये दोनों कारण पोषणीय नहीं है। पहले दूसरे बिंदु पर आते हुए, हम पाते हैं कि इस बिंदु पर इस न्यायालय का एक निर्णय है। यह जे.टी. (2003) 9 एस.सी. 201, अमरेंद्र प्रताप सिंह बनाम तेज बहादुर प्रजापति और अन्य में प्रकाशित है।

यह मामला अनुसूची जनजातीय क्षेत्र में आने वाली भूमि के हस्तांतरण से संबंधित है। यह मामला उड़ीसा के विनियम 2, 3 और 7 डी अचल संपत्ति का अनुसूचित क्षेत्र हस्तांतरण अनुसूचित जनजातियों द्वारा विनियम, 1956 द्वारा शासित था। वही विनियम जो इस मामले को भी नियंत्रित करते हैं। प्रश्न प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार के अधिग्रहण के बारे में भी था। मामले पर विस्तार से विचार करते हुए, उपरोक्त विनियमन के प्रावधानों के आलोक में, इस न्यायालय ने पाया कि जिन प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए उनमें से एक यह था कि ''क्या प्रतिकूल कब्जों का अधिकार'' (निर्णय की मद 14) उपरोक्त प्रश्न पूछे जाने के संदर्भों में, इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 23 में निम्नलिखित टिप्पणी की।

> "----------संपत्ति का अधिकार ऐसा होना चाहिए जो हस्तांतरणीय हो। और प्रतियोगी द्वारा अर्जित किए जाने में सक्षम हो। प्रतिकूल कब्जा एक हस्तांतरण अधिकार पर प्रचलित होता है। अधिकार विधि के प्रवर्तन द्वारा अलग होता है जो स्वेच्छा से और प्रतिकूल कब्जे के सिद्धान्त द्वारा मान्यता प्राप्त करने की मांग की जाती है अनैच्छिक रूप लग किए जाने के रूप में कब्जा सही दावेदार की ओर से अभाव व निष्क्रियता----------"

इस न्यायालय ने तब दो निर्णयों पर ध्यान दिया- एक प्रिवी काउंसिल का, जो ए.आई.आर. (1923) पी.सी. 205, माधवराव वामन सौंडलगेकर और अन्य बनाम रघुनाथ वेंकटेश देशपांडे और अन्य- ए.आई.आर. 36 (1949) नागपुर 265, करीमुल्लाखान पुत्र मोहम्मद इशाकखान और अन्य बनाम भानू प्रताप सिंह में प्रकाशित हुए जिसमें यह माना गया कि इनाम भूमि, वतन भूमि और नवोचित सम्पत्ति पर प्रतिकूल कब्जे से उस अधिकार को धारण करते हुए अधिग्रहण करने में असमर्थ थे क्योंकि ऐसी भूमि का राज्य के हित में अलगाव निषिद्ध था। हम आगे पाते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा जिस निर्णय मधिया नामक उपर्युक्त पर भरोसा किया गया था, उसे इस न्यायालय के समक्ष भी रखा गया था और यह देखा गया है कि यह सवाल कि क्या एक गैर आदिवासी प्रतिकूल रूप में से अधिकार का अधिग्रहण किसी जनजाति की भूमि पर कब्जा जो किसी जनजाति में स्थित है। यह मध्य नायक के मामले में न तो उठाया गया था और न ही वह मुद्दा उक्त प्रकरण में उठाया। यह आगे देखा गया है कि धारा 7-डी के प्रावधान विनियमों को इस तथ्य के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए कि अधिग्रहण प्रतिकूल अधिकार द्वारा अधिकार और उपाधि का दावा एक आदिवासी द्वारा किया जाता है। किसी अन्य आदिवासी की अचल संपत्ति, लेकिन सवाल उस गैर आदिवासी के संबंध में नहीं है जो किसी आदिवासी क्षेत्र में स्थित आदिवासी की भूमि पर प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है। अतः अमरेंद्र प्रताप सिंह उपरोक्त के मामले में निर्णय को देखते

हुए यह स्पष्ट है कि आदिवासी प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और उपाधि प्राप्त नहीं करेंगे। इसलिए अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को दरकिनार करने का दूसरा आधार आता है। इसलिए विवादित भूमि पर प्रत्यर्थी के कब्जे के बारे में अन्य तथ्यात्मक पहलू और उनकी प्रविष्टियां पक्ष लेने का भी बहुत अधिक परिणाम नहीं हो सकता है। किसी भी मामले में, मामले के इस पहलू को अन्य तथ्यों और मामले की परिस्थितियों के आलोक में देखा और नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए।

जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, अर्थात् उच्च न्यायालय के अनुसार, अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच गया है कि विचाराधीन भूमि का स्वामित्व और स्वामित्व अपीलार्थियों के पास था। अभिलेख पर कोई भी सामग्री होने के कारण, हम महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालय ने इस पहलू से बहुत ही सरलता से निपटा है। ऐसा लगता है कि इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि विवादित भूमि आदिवासी क्षेत्र में आती है। अपीलीय प्राधिकारी, जिसका निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका में दरकिनार कर दिया गया है, ने विभिन्न पक्षों द्वारा पहले दायर किए गए मुदकमों में पारित आदेशों और ऐसे आदेशों के प्रभाव पर विचार किया है और उनका उल्लेख किया है। प्रत्यर्थियों का आदिवासी क्षेत्र में भूमि पर कब्जा है, लेकिन अपीलकर्ताओं ने प्रत्यर्थी गैर आदिवासियों के हाथों जबरन उन्हें बेदखल करने का अनुरोध किया। उच्च न्यायालय, बिना उन सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, जैसा कि अपीलीय न्यायालय द्वारा विचार किया गया

था, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपीलीय न्यायालय अपीलार्थियों के पक्ष में भूमि के कब्जे और स्वामित्व के बारे में निष्कर्ष पर बिना किसी सबूत के पहुंचा था बेहतर होता कि उच्च न्यायालय सबूत के बोझ के सवाल के संबंध में भूमि के कब्जे और स्वामित्व के संबंध में अधिकारियों द्वारा पारित अन्य आदेशों पर विचार करता।

हमारे विचार में, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश टिकाऊ नहीं है। गैर लिन्काई गमांगो बनाम द्वारा प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार और अधिकार के अधिग्रहण का प्रश्न अनुसूचित जनजाति के सदस्य से संबंधित अनुसूचित क्षेत्र में भूमि पर जनजातीय उत्पन्न नहीं होता है। चूंकि इस बिंदु पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष टिकाऊ नहीं है, हमारे विचार में, पूरे मामले को तथ्यों पर विचार करने के लिए एक नए सिरे से देखने की आवश्यकता है जैसा कि विभिन्न आदेशों में विस्तार से संकेत दिया गया है। विभिन्न चरणों में, परियोजना प्रशासक द्वारा पारित पहला आदेश जो बाद में 08-04-1982 दिनांकित आदेश द्वारा अपील में रिमाण्ड पर लिया गया था और उसके बाद के आदेशों में उल्लिखित तथ्यों में से एक विद्वान वकील द्वारा इंगित किए जाने की मांग को यह अभिनिर्धारित करने से पहले कि स्वामित्व, स्वामित्व या स्वामित्व का समर्थन करने वाला कोई सबूत या सामग्री नहीं है, 1956 के विनियमन संख्या 2 के प्रावधानों के आलोक में भी देखा जा सकता है। आवेदकों का कब्जा आदिवासियों को प्रतिकूल

अधिकार द्वारा कथित रूप से अपने अधिकारों को परिपूर्ण करने के लिए उत्तरदाताओं के दावे के निहितार्थ की भी जांच की जा सकती है।

उच्च न्यायालय द्वारा पारित मामले को दरकिनार कर दिया जाता है और इस फैसले में की गई टिप्पणियों के आलोक में पक्षों को नोटिस के बाद मामले को नई सुनवाई और निर्णय के लिए उच्च न्यायालय मामले की शीघ्र सुनवाई और निपटान के लिए विचार कर सकता है। लागत आसान है।

एस.के.एस. अपीलों को अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी दिनेश त्यागी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।